जंगल, भोजन तथा पारिस्थितिकीय

तिथि : 13 दिसम्बर 2014

स्थान : अरबिंदो सोसाइटी, अदचिनी (नजदीक एनसीईआरटी), नई दिल्ली

आयोजक : लिविंग फॉर्म्स, गांधी शांति प्रतिष्ठान, सेडेड, कल्पवृक्ष

कांति पोटाई : मैं एक ग्रुप के साथ काम करती हूं जो यूनिसेफ आदिवासी इलाकों में कुपोषण से बचने के लिए कुछ सुविधाएं प्रदान किए जाने पर काम कर रहे हैं, वो मरीजों को सरकारी स्वास्थ्य केन्द्र में भेजते हैं।

अपर्णा पल्लवी : मैं डाउन टू अर्थ से जुड़ी हूं। आदिवासी दल संस्कृति में रूचि रखते हैं। वो ये जानते हैं कि वो कैसे पकाते हैं, क्या खाते हैं। मैं उसी विषय पर कॉलम लिखती हूं। आदिवासियों के फूड कल्चर पर फॉर्म टू फॉर्म मिशन कमेटी है।

मधु : मैं तमिलनाडु से आती हूं लेकिन मैं छत्तीसगढ़ में रहता हूं। वहां छत्तीसगढ़ में मेरी आदिवासी समाज के पेड़–पौधों में रूचि है। मेरी रूचि गैर–पौधे (नॉन प्लांट) भोजन में भी है और मैं इस विषय पर ही काम कर रहा हूं। मैं चाहता हूं कि हम उसे पोषण और पोषक तत्वों के साथ जोड़ें। मैं अपनी संस्था के साथ मिलकर जंगली चीजों को बचाने का प्रयास करता हूं।

कमल कुसैनी : मैं छत्तीसगढ़ से हूं। हम वहां पर स्वास्थय और पोषण कार्यक्रम चलाते हैं।

सोनी : मैं झारखंड से हूं। मैं भी वहां पर स्वास्थय और पोषण के कार्यक्रमों के साथ जुड़ी हूं।

नलिनी : मैं महाराष्ट्र में वाइल्ड लाइफ सेंचुरी, वाइल्ड वेजिटेबल तथा वाइल्ड फूड पर काम कर रही हूं।

जूही : मैं भी इसी ग्रुप के साथ जुड़ी हूं।

भूपेश : मैं छत्तीसगढ़ में रामकृष्ण आश्रम में कारीगर समाज के साथ काम कर रहा हूं। हम सुरक्षित डिलीवरी, इंस्टिट्यूशन डिलीवरी के काम देखते हैं। लोगों को स्वास्थ्य की सुविधाएं कैसे मिलें आदि विषयों पर हम लोग काम करते हैं।

रामचन्द्र : मैं मूलतः केरल से हूं। मैं नियमगिरी में 'की स्टोन फाउन्डेशनः के साथ काम करता हूं। हमारे सर्वे से पता चला कि अब 300 प्रीमिटिव ट्राइबस ही बचे हैं उनमें 59 महिलाएं हैं। We are seeing Health Support Projects देखते हैं। हमने उनकी परिस्थितियां देखीं उसमें हमने उनके जीने का तरीका, उसकी परिस्थितियों को देखा, हमने देखा कि एनीमिया, मधुमेह आदि बीमारियों के इलाज के लिए भी वो पूरी तरह से जंगलों और जंगली उत्पादों पर निर्भर रहते हैं। पिछले 35 सालों में सरकार ने पीडीए स्कीम चलाई जिससे उनकी स्वास्थ्य एवं अन्य कई क्षेत्रों में उनकी आदतें या जंगलों पर निर्भरता कम हुई है। अब वो पूरी तरह से जंगलों पर निर्भर नहीं रहे बल्कि देशी दवाइयों आदि का प्रयोग भी वहां पर होने लगा है। वो राशन के चावल और चीनी से ही अपनी खाने की जरूरत पूरी करने का प्रयास कर रहे हैं और जंगलों से मिले अनाज को केवल बेचने लगे हैं।

प्रताप बरिया : मैं मुम्बई से हूं और वहां पर 'स्कॉलर जाबा' के भील आदिवासियों के साथ शोध कर रहा हूं। हम लोग आदिवासियों की अस्मिता के संबंध में काम कर रहे हैं। भीलों को देखें तो उनकी भी संस्कृति बदल रही है। आज भीलों का संबंध बाजार से हो गया है, वो बाजारी वस्तुओं का ही उपभोग करने लगे हैं।

रीता कुमारी : मैंने सेडेड के साथ जुड़कर तुरंता भोजन (फास्ट फूड) को जानने समझने का प्रयास किया और अभी भी मेरा अध्ययन जारी है।

शुक्ला : मैंने लिविंग फार्मिंग, मदर एंड चाइल्ड वेल्फेयर पर और पोषण पर काम किया है। हम अध्ययन कर रहे हैं कि रायगढ़ आदि इलाकों में महिलाएं कुपोषण के समय एवं गर्भावस्था में कौन सा भोजन खाएं। और वो स्वच्छता के साथ भी अपना जीवन जी सकें।

गौतम देशमुख : महाराष्ट्र के थाने जिले से आदिवासियों के घरों से किचन गार्डन खत्म हो रहा है। वहां आने वाले पानी का पूरा प्रयोग नहाने आदि में भी कर लिया जाता है। वहां के 400 स्कूलों में मिश्रित खिचड़ी देने की योजना शुरू हो गई है। स्कूलों में हम बच्चों को गाय के दूध से बने घी की एक–एक चम्मच खाने को देते हैं ताकि जठराग्नि शांत हो सके। वहां के लोगों में जीने की रूचि खत्म होती जा रही है हम उसे बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं।

संजय पाटिल : मैंने बायोसेफ संस्था के साथ वाइल्ड फूड डाइवर्सिटी का डॉक्यूमेंटेशन किया है। ट्यूबर अभी भी उनके भोजन का एक भाग है। हमने नर्सरी बनानी शुरू की। हम ये देखते हैं कि शरीर में खून बढ़ाने के लिए और एनीमिया को दूर करने के लिए कौन सा भोज्य पदार्थ अच्छा होगा उस बारे में काम कर रहे हैं। इस संबंध में नई पीढ़ी का ज्ञान कम होता जा रहा है इसलिए हम स्कूलों के साथ काम कर रहे हैं। हम जंगली भोजन के चिकित्सयी मूल्यों के बारे में जानकारी देते हैं, इस संबंध में हमने डाटा बेस भी बनाया है।

शायन्तिन : मैं हिन्दुस्तान नामक अखबार में पत्रकार हूं।

रजनीकांत : मैं सेडेड के साथ जुड़कर काम करता हूं।

वक्ता : गंदगी या अशुद्धता तथा प्रियेटिव क्षेत्रों का आपस में कोई संबंध नहीं है। मैं डोंगरिया के गांव में गया वो लोग झरने में नहीं नहाते क्योंकि वो कहते हैं कि नीचे और भी लोग रहते हैं और हमारा गंदा पानी उन लोगों के पास जाएगा। तो आप बताइए कि ऐसी सोच वाले लोगों को आप गंदगी में रहने वाला कैसे कह सकते हैं।

वक्ता : हम हर चीज को ताले–चाबी में रखते हैं लेकिन आदिवासी ऐसा नहीं करते हैं इसलिए हमें उनसे ये सब सीखने के साथ–साथ लोगों के साथ संवाद कायम करना भी सीखना चाहिए।

रितु प्रिया : हमने इस कार्यक्रम को यहां पर इसलिए रखा ताकि पॉलिसी मेकर भी इसे समझ सकें। सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से देखें तो हम जितना भी खाना खा रहे हैं उससे हमें कितनी कैलोरी या प्रोटीन मिल रहा है और वास्तव में हमें कितनी कैलोरी या प्रोटीन चाहिए। ये भी ध्यान रखें कि न तो हमें मिलने वाला कैलोरी और प्रोटीन जरूरत से ज्यादा हो और न ही कम हो। माना कि हमें 8 महीने सब मिल रहा है लेकिन 4 महीने कुछ भी नहीं मिल रहा तो वो भी ठीक नहीं। तो इन तीनों की स्तरों पर जंगल का खाना आदिवासियों की किस तरह से मदद कर रहा है उसे भी देखा जाना चाहिए। ये भी ध्यान रखना चाहिए कि जंगल साल भर में क्या–क्या देता है और कितना देता है।

प्रश्न : यदि हम ये कहते हैं कि आदिवासी लोग जंगलों की चीजें न खाकर बाजार की चीजें खा रहे हैं तो वो कुपोषण का शिकार हो रहे हैं तो ऐसा ही हमारे साथ भी हो रहा है; हम भी तो उसी तरह से बाजार का सामान खाकर कुपोषित हो रहे हैं।

वक्ता : भावरगढ़ में मई के महीने में हरी फसलों की उपलब्धता होती है। मैंने उस दौरान हरी सब्जियों के साथ फ्रोन खाए तो मैंने उनसे पूछज्ञ कि उनके यहां पानी की उपलब्धता कभी खत्म नहीं होती। वहां उन्हें ये समझने में मुश्किल होती है कि उन्हें लगा कि तुम्हारे यहां हरी सब्जी नहीं मिलती। विदर्भ में चार महीने में ही हरी सब्जी मिलती है।

बेगा आदिवासी 'बाड़िया' बनाते हैं वो 8 महीनों के लिए हरी सब्जियों को भी सुरक्षित कर लेते हैं। इस प्रकार हमें देखना होगा कि ये उपलब्धता का प्रश्न किस तरह से पारिस्थितिकीय से जुड़ा है। वो हर चीज को जंगल से ही जोड़कर देखते हैं।

वक्ता : मैंने 330 पेज का एक दस्तावेज बनाया उसमें स्पष्ट किया है कि आदिवासियों को हर समय, लगभग हर सीजन में कुछ न कुछ मिलता ही रहता है। अब उनकी जनसंख्या में वृद्धि नहीं हो रही है।

रितु प्रिया : अभी तक की बातचीत से ये समझ आया कि हरे पत्तों की साग की समस्या नहीं है पर दूसरी तरफ एनआईएन जैसे सर्वे दिखाते हैं कि आदिवासी जब पोषण की बात करते हैं तो वो कैलोरी को देखते हैं पर वो निम्नता में आ रहे हैं। वो बहुत कुछ ले रहे हैं लेकिन फिर भी कुपोषित हैं। वो तरीके जंगल से या तो लुप्त हो गए हैं या वो इस्तेमाल में नहीं रहे।

वक्ता : वहां 10–15 दिन में एक महिला की मौत हो जाती है और उसका मुख्य कारण ऊर्जा की कमी होती है इसलिए हमने उनको आदत डाली कि खेती करो वही अच्छी है। हम महाराष्ट्र के 'कसुबई' आदिवासी इलाके के बारे में कहते हैं कि खेती करो क्योंकि बॉयो–डाइवर्सिटी कम हो रही है। पानी कम हो गया हैं वहां पहली बार ऐसा हुआ कि पानी ही नहीं रहा। वो साल में एक ही फसल (भात) लेते हैं और यदि पानी नहीं गिरा तो वो भी बर्बाद हो जाती है। पीने के पानी की सुविधा नहीं है। नल का पानी भी नहीं है। वहां के

इलाकों में 'आदर्श गांव स्कीम' चल रही है लेकिन आदिवासियों को ही नहीं देखा जा रहा है। वहां बहुत गरीबी है जिसके कारण 90–100 प्रतिशत घरों के लोग 100–200 रुपए के लिए पलायन कर जाते हैं। पोषण की समस्या तो है ही। वहां 150–200 जंगली चीजें (वाइल्ड फूड आइटम) मिलते हैं लेकिन वो नहीं ला पाते हैं।

मधु : कोई भी परंपरागत खाद्य पदार्थ देखें जो कि बहुत सदियों या सालों से आ रहा है और जिसके बारे में हम ये सोचते थे कि वो संतुलित आहार है और उसको खाने के बाद हमारी ये सोच होती थी कि हम संतुलित आहार खा रहे हैं। पोषक संतुलित आहार की बात करें तो जो तमिल लोग इडली आदि खाते हैं वो भी फ्राई करके खाते हैं। तो उसी तरह से आदिवासियों का 30–50 साल पुराना खाना बदल रहा है। गांव में उतने भोज्य पदार्थ नहीं मिलते लेकिन बाजार के पास वालों को दूसरी चीजें मिल रही हैं। असंतुलन शुरू हो रहे हैं और उसका जो कारण है कुछ कम हो रहा है और कुछ नहीं हो रहा है। जब हरी सब्जियों को सुखाया जाता है तो सभी पोषक तत्व गायब हो जाते हैं। हमारी जो जानकारी या जो भी आप सोच रहे हैं हस्तक्षेप की कि क्या संतुलित आहार है और क्या वो कम हो गया है और क्या बचा है। हमें जीवन में होने वाले परिवर्तन देखने होंगे। जहां वो ठीक नहीं है तो वहां पर क्या परिवर्तन आ गए हैं उन्हें भी देखना होगा कि क्या परिवर्तन हो गए हैं और उसमें हमें क्या करना चाहिए। आदिवासी युवा वहां से निकल गए हैं। बस्तर में चावल अभी 30 साल में आया है। पहले चावल के साथ ग्रीन और बाकी चीजें खाते थे लेकिन अब नहीं खाया जाता है। पीडीएस से कोई गाय चरवाहा नहीं मिल रहा। सेंट्रल एरिया में सारा गाय का चारा खत्म हो गया है। अब वहां के लोग गायों को मारकर भी नहीं खा सकते हैं क्योंकि ऐसा करने पर थानेदार आ जाता है। वहां पर खाना सर्व नहीं होता वहां एक आदमी को खाने के बर्तन के रूप में एक 'डोपा' दिया जाता है और उसको भरकर उसे खाद्य पदार्थ दिया जाता है अर्थात सबको बराबर भोजन दिया जाता है क्योंकि हर आदमी लगभग एक जितना ही काम करता है इसलिए सब बराबर ही खाते हैं। वहां कई लोगों को शूगर की बीमारी भी हो गई है। गांव के अंदर फोन पर बात करते हैं तो परिवर्तन से भोजन में बुनियादी सुस्तपने के गुण और मात्रा दिखती है।

वक्ता : 'महुआ' के पेड़ को ये कहा कि इस पेड़ से हम पिछड़ रहे हैं इसलिए सब खत्म कर दिए गए। इसलिए तेल और कृषि के लिए बायोमास नहीं मिल रहा है। चावल के खेत में मनका होते थे, एक ही खेत में 35 मनके मिलते थे वो अब मिलना बंद हो गया है। धान की खेती की पद्धति खत्म हो गई है जैसे आया कि जमीन को समतल करो। हस्तक्षेप की श्रृंखला से सब खत्म हो रहा है।

वक्ता : यदि हम पूछें कि ऊर्जा कहां से मिलती है तो वो कहते हैं कि शाल मीट से मिलती है। वो अनाज बहुत कम खाते हैं, वो शक्ति और ऊर्जा को हमारे तरीके से नहीं देखते।

वक्ता : जब मैंने 100–150 ग्राम खा लिया जो चैतन्य दैवीय शक्ति रहती है वो शक्ति होती है। स्थिर प्रक्रिया में वनस्पतियां हैं। हमें गाय भैंस को सिखाना नहीं होता वैसे ही उन्हें भी सिखाने की जरूरत नहीं थी। पहले प्रकृति के संबंध था, उसके साथ संवाद था। पहले वो प्रकृति से जुड़े हुए थे। जब शहर बने हैं तभी से कृषि करने की पद्धति भी शुरू हुई है। इसलिए मुझे नहीं लगता कि कृषि का कोई समाधान है।

वक्ता : जब से सरकार ने आदिवासियों की कुछ चीजों का मूल्य वर्धन किया है है तब से वो चीजें खत्म होती जा रही हैं जैसे कि महुआ को ही लें तो वो अब खत्म होता जा रहा है।

वक्ता : आदिवासियों में पुराने बुजुर्ग से उन्हें 'इंडीजीनियश' ज्ञान है कि कब खाना है, कैसे खाना है और वो ज्ञान नई पीढ़ी में नहीं जा रहा है। वो हमें देखते हैं और अपनी परंपरागत पद्धतियों को अनदेखा कर रहे हैं। तो जब तक उसका विभेद नई पीढ़ी को नहीं बताया

जाएगा तो मुश्किल होगी। जैसा कि कहा जा रहा है कि उन्हीं चीजों को गांव के आदिवासी खाते हैं तो उनको पोषण नहीं मिल पा रहा या वो सभी चीजों को खाना भी नहीं चाह रहे हैं लेकिन उन्हीं चीजों को बाहर के विदेशी लोग खाना चाहते हैं और खा भी रहे हैं। वाणिज्यीकरण हो रहा है और ऐसा नकदी फसलों के कारण हुआ है। तो हम किस तरह से लोगों को जागरूक करें कि नई पीढ़ी तक वो ज्ञान पहुंच सके इसके बारे में सोचा जाना चाहिए।

वक्ता : हमने पहले तो आदिवासियों के घरों में बिजली लगा दी है और उसके बाद हम सोचते हैं कि वो बिजली के प्रति आकर्षित न हों। उन इलाकों में जब कोई भी बाहर से जाता है तो उनको लगता है कि वो उनके लिए कुछ न कुछ लेकर ही आया होगा। उनके इलाके में बिजली आने के बाद वो चाहते हैं कि उन्हें फ्री में फ्रिज मिले। वो बिजली चाहते हैं वो बोलते हैं कि उन्हें बिजली बच्चों को पढ़ाने के लिए और औरतों के खाना बनाने के लिए चाहिए और ऐसा वो लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए बोलते हैं क्योंक वो भी चालाक हो गए हैं। और वो बिजली चाहते हैं लेकिन थोड़ी नहीं बल्कि 600 वाट की बिजली की मांग करते हैं और उसके बाद वो बिजली से चलने वाला सामान कर्जा लेकिन खरीदते हैं। आज उनके सभी सस्टनेबल तरीके खत्म हो गए हैं।

मधु : तमिलनाडु में 50 प्रतिशत शहरी इलाका है। महाराष्ट्र, गुजरात भी शहरी इलाका है। तमिलनाडु में आदिवसियों की जनसंख्या बहुत ही कम है। तो हम चाहते हैं कि वो कम्प्यूटर भी सीखें, पढ़ें भी और जंगली फूड भी खाएं। पीडीएस चावल ने क्या किया गाय वगैरह चले गए और गाय बिक गई और उसकी जगह ट्रैक्टर ने ले ली। उड़ीसा में शराब पानी मना है।

वक्ता : पॉलिसी पर ध्यान देने की जरूरत है। इन्हें लगता है कि टिंबर ही हमारे लिए जंगल हैं। वहां एक त्यौहार होता है वो मधुमक्खियों के संरक्षण के लिए मनाया जाता है। पढ़े–लिखे बच्चों को 'भाजी' अच्छी नहीं लगती आदिवासी पूंजीवाद को आने नहीं देता था वहां लेन–देन वाली पद्धति थी जिसके कारण वहां पर गरीबी नहीं थी। टमाटर जुताई में होता है लेकिन वहां नहीं होती वहां अमटा बूंदें ही खट्टा करने के लिए रखते हैं। उसे संचय करने की इच्छा नहीं। इस व्यवस्था से उनका वो एहसास खत्म हो गया है। धान केवल चावल नहीं बल्कि उससे पूरा जुड़ा है। उनका मूल है नाचना, गाना और तभी करते हैं जब उनका जंगल और इस तरह की स्थिति कायम हो जाएगी। वहां कभी कोई भूख से नहीं मरता। कभी कम पानी वाली तो कभी ज्यादा पानी वाली फसलें आएंगी लेकिन आएंगी। वहां बलात्कार की कोई संस्कृति नहीं। जंगल के संबंध में उनको ये एहसास कराना कि ये आपका है।

रितु प्रिया : जो बदलाव आ रहे हैं उनको रोकना संभव है क्या? नवयुवक को उससे क्या मतलब मिलेगा। यदि हम पोषण के स्तर पर बात करें तो क्या हो?

वक्ता : सर्व शिक्षा अभियान की बात करें तो आदिवासी बच्चों को वो एक बंद कमरे में दी जा रही है। उस शिक्षा में उन्हें जंगल, पर्यावरण की काई समझ नहीं दी जा रही है। ग्रीन की बात करें तो हमारे पास जो था वो हमने खो दिया। आदिवासियों में बाल विवाह होता है। 13–14 साल मे वहां की लड़कियां मां बन जाती हैं। भला वो उनको पोषण कैसे देंगी इसलिए सिस्टम को भी बदलना है। बाल विवाह और पलायन होता रहता है, वो खुद को गरीब मानते हैं और बाहर की दुनिया में जा रहे हैं। बच्चे शहर आकर माता–पिता के साथ काम कर रहे हैं। 12–13 साल में वो कठोर मेहनत करते हैं, उनका शरीर गल जाता है। पान, गुटका, मसाला, दारू आदि चीजें वो मार्केट से ले रहे हैं। महिलाएं भी वो सब खाती हैं और वो कहते हैं कि इसको खाने से और ऊर्जा आती है।

वक्ता : केरल में कृषि होती है।

वक्ता : स्कूल टीचर मायने रखते हैं कि वो बच्चों को कैसे प्रभावित करें। स्कूल वाले बच्चे जंगली जानवरों को नहीं खाते। वैसे ही नाम की बात करें तो वो वहां हमारी ही तरह के नाम रखने लगे हैं। जो वहां पर काम करने जाएं उनके सिद्धांतों में ऐसा हो कि वो संस्कृति का सम्मान करें। उसी तरह से उन्होंने अपने भगवान के नाम भी बदल दिए हैं।

वक्ता : किचन गार्डन से घर के अंदर बड़ा रिसोर्स आ रहा है ये एक जीवंत उदाहरण है। जहां तक शादी–ब्याह की बात है तो वो अपना जीवन साथी खुद ही चुनते हैं।

रितु प्रिया : किचन गार्डन से ग्रीन टयूबर पर वापिस आ जाना ही बेहतर है। नॉन–कल्टीवेटेड फूड का वापिस आना ठीक है।

मधु : अन–कलटीवेटेड फूड के लिए आंदोलन यूरोप से शुरू हो गया है कि ये करना है, वो करना है।

वक्ता : कुछ व्यक्तिगत लोग ऐसा कर रहे हैं। स्कूल में एक ही टीचर अध्यापन करवा रही है।

.....

आदिवासी परंपरा ये है कि वो अलग नहीं एक है। आदिवासी को शिक्षा मिलना चाहिए भी। अच्छे कपड़े मिलें बाहर में आएं। एक ने कहा कि परंपरा को सीखना है, समझना है, उसमें रहना है और किसी ने कहा कि परंपरा मे भी शिक्षा दी जाती थी वो कई तरह की शिक्षा देते थे। आदिवासी को 10 और 100 रुपए का अंतर नहीं है। सभी तरह से अध्ययन कर इस परंपरा को बाहर ले जाने की बात हो। आदिवासी में शिक्षा अपनी पारंपरिक मां की भाषा में हो ताकि हमारी संस्कृति और परंपरा बची रहे। पारंपरिक शिक्षा स्थानीय भाषा में हो। मातृ भाषा में भ्झी हमें क्या सिखाया जा रहा है कि उसमें सेट में जो हो रहा है उसी को ही अनुवाद

करके सिखाया जा रहा है। वहां लड़ने के तरीके आदि नहीं सिखाए जा रहे हैं। कुछ लोगों का है कि हम पिछड़े हैं तो ये आया था कि बहुत सारे गांव ऐसे आए हैं कि तीन दीवार हम बनाएं और तीन वो पर एक सब मिलकर बनाए तो उसमें बैक्वर्ड वो कहां हैं। वहां हमें इन्दिरा आवास योजना नई चीज दे दी। यहां जो हुआ वो आगे कैसे जाए इसे एक रिज्यूल्यूशन के रूप में एक प्रस्ताव के रूप में दिखाएं। तो एक प्रस्ताव रेजयूल्यूशन के रूप में निकलकर आया।

उनकी परंपरा टूट गई उसे बचाया जाए और आधुनिकता से उन्हें कैसे छुड़ाया जाए इस बारे में सोचा जाना चाहिए।

दूसरा ग्रुप

भूमि पर बहुत सारी विकास प्रक्रियाएं चल रही हैं। कल्टीवेटेड फूड घटता जा रहा है। पहले आदिवासी घने जंगल में रहते थे और जंगलों से प्राप्त पदार्थों से ही उनका गुजारा होता था लेकिन अब वो जंगलों से प्राप्त सामान को फेंक रहे हैं। अब सरकार जंगलों के इलाकों में सेन्चुरी विकसित करने के बारे में सोच रही है। वो उनके कानूनी विकल्पों को वरीयता नहीं दे रही है। माफिया राज चल रहा है लोगों को उनसे निपटने के लिए लड़ाई लड़नी पड़ रही है।

हमारे बीच कई राज्यों के साथी थे जिन्होंने आदिवासियों के बारे में बात की। जो चुनौती के रूप में देखने को आ रहा है तो सरकार, उसकी नीतियां और कॉरपोरेट चुनौती है। समस्याएं खनन और औद्योगीकरण के कारण आ रही हैं। बड़े बांध बन रहे हैं और बनखंड डूब रहे हैं। जंगलों में उनकी गतिविधियां बहुत घटती जा रही हैं। जंगल में खेती घट गई है, जहां कुछ बचा है वो सीआरपीएफ आदि के रहने से घट गया। बांध के कारण जंगल डूब रहे हैं। औद्योगिक कचरे से नदियों, झरनों में मछली की प्रजाति नहीं दिख रही। सिविलाइजेशन मिशन में जो हैं वो सोच विचार, संस्कृति और खाने की संस्कृति को एक व्यवस्था में ले रहे हैं। हम अपना तरीका उन्हें सिखा रहे हैं। फूड संस्कृति बदल जाने से, और पैकेट संस्कृति के आने से नई पीढ़ी में अनकल्टीवेटिड लैंड, मिलेट्स में प्रभाव पड़ रहा है। सब चीजें पैसे में तब्दील हो रही हैं। वो अपने जंगल की चीजों को खुद नहीं खा रहे बल्कि उन्हें बेच रहे हैं। फास्ट फूड भी हर जगह जा रहा है। पीडीएस आने के बाद गुणात्मकता घट गई है। हाईब्रिड वेज तथा बीटी कॉटन से ये सारी चीजें घट गई हैं। अनकल्टीवेटेड फूड की बात करें तो हम चाहते हैं कि बड़े मार्केट तक उनकी पहुंच हो और वो बाहर भी जाएं। एफआरए की बात थी और हम चाहते हैं कि सरकार जिस तरह के जंगलों को विकसित कर रही है उसमें वो 50 प्रतिशत जंगली खाद्य पदार्थों के पौधे लगाए ताकि स्थानीय लोगों को भी उसका लाभ हो सके। सरकार न केवल प्लांटेशन करे बल्कि वो प्राकृतिक जंगलों को भी छोड़ दे। एक अनुभव आया

कि यदि लोग अपने–आप जंगल को संभालें तो बेहतर हो सकता है लेकिन आज युवा पीढ़ी अनकल्टीवेटेड भूमि को कमतर समझती है, वो उसका ज्यादा खाना पसंद नहीं करती है और उसके साथ–साथ लिंकेज भी खत्म हो रहा है। युवा पीढ़ी में जंगल के फलों एवं भोज्य पदार्थ को खाने की संस्कृति नहीं है। परंपरागत खेती को माना ही नहीं जा रहा है। झूम खेती है एफआरए में उनके लिए प्रावधान हैं फिर भी जंगलों का विकास उसमें रोक लगा रहा है। पॉलिसी में कमी है लेकिन डिपार्टमेंट और उनके कॉर्डिनेशन में फर्क है। वहां फारेस्ट डिपार्टमेंट को लेकर दो बातें कहनी थीं। जंगल का हक मिला उसमें दो बातें हैं एक तो व्यक्तिगत दावा और दो दूसरा कम्युनिटी का दावा कर सकता है। अभी फॉरेस्ट डिपार्टमेंट व्यक्तिगत कामों के लिए जमीन दे रहा है पर कम्युनिटी पर नहीं दे रहा है। प्लांटेशन दो लोग करते हैं एक तो फॉरेस्ट डिर्पामेंट और दूसरा ईएसआर जोर लगाने पर 10 प्रतिशत देते हैं। यदि हम उन्हें लिस्ट दें कि ये पेड़ न लगाएं तो वो लागू हो ताकि वो खतरनाक एवं बेकार के पेड़ों को न लगाएं। एक सूची में जो लगा सकते हैं और दूसरा जो नहीं लगा सकते हैं।

रितु प्रिया : आदिवासियों से पोषण के बारे में भी बात हुई कि वो पीडीएस के चावल पर निर्भर हों कि नहीं हों। देखने में आया है कि उनमें कुपोषण बढ़ा है। महाराष्ट्र में जंगल खत्म हो गए हैं तो इसके कारण पलायन बढ़ा है और इसी के कारण कुपोषण भी बढ़ रहा है। जहां तक भाषा की बात है तो उसमें भी ये देखना होगा कि वो क्या सिखा रहे हैं जो परंपरागत भोज्य पदार्थ थे उसमें भी कितना कैलोरी और प्रोटीन मिल रहा है ये भी देखने की बात है। वहां गुणवत्ता को भी अलग ढ़ंग से देखा जाता है कि वो आपको कितना स्वस्थ रखेगी। परंपरागत चीजों को बढ़ावा देने का प्रयास किया जाना चाहिए।

वाणी : मैं यूनिसेफ के साथ काम करती हूं और मैंने देखा कि जो लोग जंगल एवं जंगलों के अधिकारों, एन्थ्रोपोलॉजी के साथ काम करते हें वो अलग–अलग हैं।

अगर हम मिनिस्ट्री के साथ काम करते हैं तो हमें उसके प्रावधान जानने होंगे अगर हम ये कहें कि कुछ नहीं कर रहे तो कुछ नहीं करेंगे यदि ये कहें कि बहुत कुछ कर रहे हैं तो और करो ऐसा कहा जाएगा।

हम जंगल के नजरिए को अनदेखा करते हैं उसमे कुछ अच्छाइयां हैं उन्हे जो जानकारी मिल रही है या शिक्षा मिल रही है उसका कुछ नहीं हो रहा।

हम जंगल को अपना मानेंगे और समझेंगे तभी ठीक होगा।

आगे क्या करना है के बारे में ये है कि जंगल अनकल्टीवेटेड लैंड को लेकर आम राय भी नहीं बना पाए तो एक किस्म का जिसमें वैचारिक पक्ष हो जंगल को कोई बना नहीं सकता। जंगल को छोड़ दें तो वो री–जनरेट हो जाएगा। हम पॉलिसी लेवल में किस तरह ही इंटरवेंशन चाहते हैं उसपर लेख के रूप में कुछ लिख सकें और एक राय बना सकें ताकि आगे क्या कर सकते हैं। विकास की अवधारणा और ग्लोब्लाइजेशन से जो तेजी आई है उसपर भी ध्यान देने की जरूरत है।

नियमगिरि, पास्को की लड़ाई में हमारा सरोकार क्या हो। लोगों की जो लड़ाई चल रही है उसके पक्ष में रहना और सपोर्ट करने में ये भी एक ढ़ंग है। मोटा–मोटा सरकार की नीति और कॉरपोरेट यदि लड़ाई को एक ताकत, दिशा मानते हैं जो इस किस्म के काम से जुड़े हैं इन सबको कैसे एक नेटवर्क में लाना है तो संघर्ष और संगठन एक बात हो। शिक्षा तो संघर्ष के लोगों को सपोर्ट करना तथा जंगल, पारिस्थितिकीय, फूड को लेकर यदि एक लेखा–जोखा तय कर सकें तो बेहतर होगा।